



## संत कनक दास और संत कबीर दास के सामाजिक विचारों की प्रासंगिकता एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. एस. एस. देसाई

सह प्राध्यापक, श्री संगमेश्वर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय चडचन जिला : विजयपुर कर्नाटक.

### भूमिका :

वैश्विक साहित्य के परिपेक्ष में कन्नड़ और हिंदी साहित्य का अद्भुत और अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि मध्यकालीन साहित्य में गिरते हुए सामाजिक मूल्यों को और जात-पात की व्यवस्था को उखाड़ कर फेंकने के लिए और मानव धर्म की स्थापना के लिए तथा लोगों को सही रास्ते पर लाने के लिए कन्नड़ और हिंदी के अनगिनत कवियों ने क्रांतिकारी विचार व्यक्त किए हैं इनमें से कन्नड़ के कनकदास और हिंदी के कबीर दास अपने समय के अत्यंत क्रांतिकारी और सामाजिक सुधारवादी चिंतक, कवि और संत हैं जिनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं और इस लेख में इन्हीं दो महान हस्ताक्षरों के बारे में तुलनात्मक विचार प्रस्तुत किए जाएंगे। यह विस्तृत लेख इन दोनों युगद्रष्टा संतों के विचारों में निहित सामाजिक चेतना का एक तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक और गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है।



कन्नड़ साहित्य के भक्ति आंदोलन के देदीप्यमान नक्षत्र भक्त कनकदास और हिंदी निर्गुण काव्यधारा के अप्रतिम संवाहक संत कबीरदास भारतीय आध्यात्मिक और सामाजिक इतिहास के दो ऐसे स्तंभ हैं, जिन्होंने अपने विचारों, भजनों और पदों के माध्यम से समाज को एक नई दिशा दी। इन दोनों महान संतों का कालखंड भले ही भिन्न रहा हो और उनकी भाषाएं (कन्नड़ और हिंदी) अलग रही हों, लेकिन उनके विचारों की अंतर्धारा एक ही थी—मानव मात्र की समानता, बाह्याडंबरों का विरोध, जातिप्रथा पर तीखा प्रहार और ईश्वर के प्रति निश्छल प्रेम।

### भक्ति आंदोलन और सामाजिक पुनर्जागरण युग :

मध्यकालीन भारत में उदित हुआ भक्ति आंदोलन केवल एक धार्मिक आंदोलन नहीं था, बल्कि यह एक युगांतरकारी सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति थी। इस आंदोलन ने सदियों से शोषित, वंचित और हाशिए पर खड़े समाज को अपनी आवाज दी।

कनकदास (1509 – 1609 ईस्वी): कर्नाटक के हावेरी जिले के बाड़ गांव में जन्मे कनकदास 'दास साहित्य' (हरिदास आंदोलन) के प्रमुख कवि थे। वे 'कुरुबा' (चरवाहा) समुदाय से थे, जिसे तत्कालीन समाज में निचली जाति माना जाता था। व्यासराज जैसे महान गुरु के शिष्य होने के बावजूद उन्हें अपने जीवन में जातिगत भेदभाव का भीषण सामना करना पड़ा।

कबीरदास (1398 – 1518 ईस्वी, सर्वमान्य तिथि): काशी (वाराणसी) की भूमि पर अवतरित कबीरदास जुलाहा (बुनकर) परिवार में पले-बढ़े। उन्होंने स्वयं को न तो पूर्णतः हिंदू माना और न ही मुसलमान, बल्कि वे इन दोनों धर्मों की कुशितियों से ऊपर उठकर एक सच्चे मानव धर्म के प्रणेता बने।

इन दोनों संतों की सामाजिक चेतना का उद्गम उनके व्यक्तिगत अनुभव और ईश्वर की सर्वव्यापकता में अटूट विश्वास से हुआ था।

### जाति प्रथा और सामाजिक असमानता पर प्रहार :

भारतीय समाज की सबसे बड़ी त्रासदी उसकी जन्म-आधारित जाति व्यवस्था रही है। कनकदास और कबीरदास दोनों ने ही इस व्यवस्था की जड़ों पर तीखा प्रहार किया।

### कनकदास का दृष्टिकोण:

कनकदास ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'रामधान्य चरित्र' के माध्यम से वर्ग और जाति संघर्ष को एक बेहद अनोखे रूप में प्रस्तुत किया। इस रूपक काव्य में वे 'रागी' (मडुआ/नाचनी—जो गरीबों का भोजन है) और 'चावल' (जो अमीरों और उच्च जातियों का भोजन है) के बीच संवाद कराते हैं।

चावल खुद को श्रेष्ठ बताता है क्योंकि वह यज्ञों में उपयोग होता है और अमीर उसे खाते हैं।

अंत में भगवान श्री राम 'रागी' को श्रेष्ठ घोषित करते हैं क्योंकि उसमें धैर्य, सादगी और आम जनता की ताकत है। यह कनकदास की सामाजिक चेतना का चरम था, जहां उन्होंने प्रतीकात्मक रूप से शोषित वर्ग को शोषक वर्ग पर वरीयता दी।

### अपने एक प्रसिद्ध कीर्तन में वे गाते हैं:

कुल कुल कुलवेन्दु होददादिरे, निम्मा कुलद मूलवन्नादहरू बन्नीरे..."

(तुम लोग जाति-जाति चिल्लाते रहते हो, क्या तुम्हें अपनी जाति के मूल का पता है? आत्मा की कोई जाति नहीं होती, फिर यह अहंकार कैसा?)

### कबीरदास का दृष्टिकोण: जन्मना श्रेष्ठता का खंडन

कबीर ने जाति व्यवस्था पर जो चोट की, वह आज भी बेजोड़ है। उन्होंने तथाकथित उच्च जाति के लोगों (ब्राह्मणों) को सीधे चुनौती दी कि यदि वे जन्म से श्रेष्ठ हैं, तो उनकी शारीरिक संरचना दूसरों से अलग क्यों नहीं है?

जौ तू बाम्हन बाम्हनी जाया, तौ आन बाट है काहे न आया?"

"तुर्क मसीती असुलहि जाया, तौ भीतर खतना क्यों न कराया?"

कबीर का मानना था कि ईश्वर की नजर में सभी मनुष्य एक समान हैं। जो ईश्वर की भक्ति करता है, वही श्रेष्ठ है:

"जाति-पाति पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।"

## बाह्याडंबरों, पाखंडों और रूढ़िवादिता का विरोध

धार्मिक कर्मकांड, अंधविश्वास और पाखंड समाज को मानसिक रूप से गुलाम बनाए रखने के सबसे बड़े हथियार रहे हैं। दोनों संतों ने इन कुरीतियों के खिलाफ जेहाद छेड़ा।

## कबीर का क्रांतिकारी विद्रोह

कबीरदास किसी भी प्रकार के दिखावे के सख्त खिलाफ थे। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के ठेकेदारों (पंडितों और मुल्लाओं) को आड़े हाथों लिया।

“मुस्लिम पाखंड पर चोट: “कांकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई बनाय। ता चड़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥”

“हिंदू कर्मकांड पर प्रहार: “पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजूं पहार। ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार॥”

“तीर्थाटन और मुंडन का विरोध: कबीर का मानना था कि गंगा में नहाने या सिर मुड़ाने से कोई पवित्र नहीं होता। यदि मन मैला है, तो सब व्यर्थ है। “केसो कहा बिगारिया, जे मूड़े सौ बार। मन को काहे न मूड़िये, जामे भयों विकार॥”

कनकदास का विरोध कबीर की तरह आक्रामक न होकर तार्किक और आनुभूतिक था। वे उडुपी के श्री कृष्ण मंदिर में जाना चाहते थे, लेकिन निचली जाति का होने के कारण उन्हें मंदिर में प्रवेश नहीं मिला। वे निराश नहीं हुए। वे मंदिर की पिछली दीवार के पास बैठकर लीन होकर भजन गाने लगे।

कहा जाता है कि उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान कृष्ण की मूर्ति का मुख घूम गया और दीवार में दरार आ गई, जिससे कनकदास को दर्शन मिले। आज भी उडुपी में इसे 'कनकना किंडी' (कनक की खिड़की) कहा जाता है।

कनकदास ने इस घटना के माध्यम से समाज को यह संदेश दिया कि ईश्वर पत्थरों की चहारदीवारी या पुजारियों के नियंत्रण में नहीं है; वह तो भक्त के हृदय में रहता है।

उन्होंने अपने कीर्तनों में कहा कि बाहरी स्नान या भस्म मलने से मुक्ति नहीं मिलती।

ईश्वर की अवधारणा:

निर्गुण बनाम सगुण

वैचारिक धरातल पर दोनों संतों में थोड़ा अंतर दिखाई देता है, लेकिन उनका गंतव्य एक ही था।

कबीर के राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र नहीं हैं, वे घट-घट वासी हैं:

“दसरथ सुत तिहुं लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।”

वहीं कनकदास भगवान केशव की मूर्ति में पूरे ब्रह्मांड को देखते हैं। वे अपने गुरु व्यासराज के उस परीक्षण में सफल होते हैं जहां उन्हें एक केला ऐसी जगह खाने को कहा जाता है जहां कोई न देख रहा हो। कनकदास केला वापस ले आते हैं

क्योंकि उन्हें हर जगह भगवान ही दिखाई दे रहे थे। यह उनकी आध्यात्मिक समतावादी सोच थी—जब ईश्वर सबमें है, तो समाज में भेद कैसा?

### मानवीय मूल्य, नैतिकता और आचरण की शुद्धता :

दोनों संतों ने केवल समाज की कमियां ही नहीं गिनाईं, बल्कि एक आदर्श समाज के निर्माण के लिए नैतिक मूल्यों पर जोर दिया।

कबीर का 'सत्य' और 'अहिंसा' का संदेश

कबीरदास ने समाज को 'सहज जीवन' जीने की कला सिखाई। उन्होंने संतोष, दया और वाणी के संयम को सबसे बड़ा धर्म माना।

"ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय। औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय॥"

आर्थिक विषमता पर नियंत्रण (संतोष):

"सांई इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय। मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाय॥"

अहिंसा: जीव हत्या के खिलाफ कबीर बेहद मुखर थे।

"बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल। जे नर बकरी खात हैं, तिनका कौन हवाल॥"

### कनकदास की नैतिक चेतना और समाज सुधार :

कनकदास ने कन्नड़ समाज में व्याप्त लालच, स्वार्थ और वासना की भर्त्सना की। उन्होंने अपने कीर्तनों में 'आत्मा' और 'परमात्मा' के मिलन के लिए इंद्रियों के निग्रह को आवश्यक बताया। उन्होंने कहा कि जब तक मनुष्य के भीतर से 'मैं' और 'मेरा' का अहंकार नष्ट नहीं होता, तब तक समाज का कल्याण संभव नहीं है।

नानु होदरे होदेलु..."

(यदि 'मैं' यानी अहंकार चला जाए, तभी मुक्ति या शांति मिल सकती है।)

### साहित्यिक अवदान और जनभाषा का प्रयोग :

किसी भी विचारक की सामाजिक चेतना तब तक जन-जन तक नहीं पहुंच सकती, जब तक उसकी भाषा सरल न हो। इन दोनों संतों ने तत्कालीन विद्वानों की भाषा (संस्कृत) को छोड़कर लोकभाषा को अपनाया।

कबीर की सधुक्कड़ी/खिचड़ी भाषा: कबीर अनपढ़ थे ("मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहीं हथ"), लेकिन उनकी भाषा में गजब की वेधन-क्षमता थी। उन्होंने अवधी, भोजपुरी, ब्रज, राजस्थानी और पंजाबी के शब्दों को मिलाकर एक ऐसी भाषा बनाई जो आम जनता के सीधे दिल में उतरती थी। उनके दोहे, साखियां और पद आज भी लोकोक्तियों के रूप में जीवित हैं।

कनकदास की कन्नड़ (नव्य-कन्नड़): कनकदास ने परिष्कृत किंतु सरल कन्नड़ भाषा में कीर्तनों और काव्यों (जैसे नलचरित्रे, हरिभक्तिसार, मोहनतरंगिणी) की रचना की। उन्होंने संगीत (कर्नाटक संगीत) को सामाजिक जागृति का माध्यम बनाया। उनके कीर्तनों की लय और धुन ने समाज के सबसे निचले पायदान पर बैठे व्यक्ति को भी झकझोर कर रख दिया।

### कबीर और कनकदास में समानताएं व अंतर :

एक विस्तृत दृष्टि से देखें तो दोनों संतों में अद्भुत साम्य था फिर भी उनकी अभिव्यक्तियों में कुछ मौलिक अंतर थे।

#### समानताएं :

**उत्पीड़ित पृष्ठभूमि:** दोनों ने स्वयं सामाजिक उपेक्षा और अपमान झेला था, इसलिए उनकी चेतना किताबी नहीं, बल्कि प्रामाणिक थी।

**मानवतावाद:** दोनों के लिए मनुष्यता सर्वोपरि थी, कोई भी धर्म या शास्त्र मनुष्य से बड़ा नहीं था।

**गुरु का महत्व:** कबीर के लिए स्वामी रामानंद (या गुरु का अमूर्त रूप) और कनकदास के लिए श्री व्यासराज पूजनीय थे। दोनों ने माना कि गुरु के बिना सामाजिक या आध्यात्मिक अंधकार दूर नहीं हो सकता।

**निडरता:** दोनों ही सत्ता, पुरोहित वर्ग और सामाजिक ठेकेदारों से डरे बिना अपनी बात स्पष्टता से कहते थे।

#### अंतर :

##### अभिव्यक्ति की शैली:

कबीर की शैली अकखड़, आक्रामक और सीधी चोट करने वाली थी ("कबीरा खड़ा बजार में, लिए लुकाठी हाथ")। कनकदास की शैली व्यावहारिक, काव्यात्मक, रूपकात्मक और संगीतमय थी।

**धार्मिक ढांचा:** कबीर किसी भी संस्थागत धर्म के दायरे में नहीं बंधे। कनकदास वैष्णव धर्म के हरिदास संप्रदाय के भीतर रहकर सुधार कर रहे थे।

**साहित्यिक विधा:** कबीर ने मुख्य रूप से मुक्तक (दोहे और पद) लिखे, जबकि कनकदास ने मुक्तक (कीर्तन) के साथ-साथ महाकाव्यात्मक और आख्यानपरक रचनाएं (जैसे मोहनतरंगिणी) भी लिखीं।

#### समकालीन प्रासंगिकता:

आज जब हम 21वीं सदी में जी रहे हैं, विज्ञान और तकनीक ने अभूतपूर्व प्रगति की है, लेकिन सामाजिक मोर्चे पर हम आज भी उन्हीं बुराइयों से जूझ रहे हैं जिन्हें कबीर और कनकदास मिटाना चाहते थे।

बढ़ती सांप्रदायिकता और कबीर: आज के दौर में जब धर्म के नाम पर नफरत फैलाई जा रही है, कबीर का यह संदेश कि "अल्लाह राम का एक ही राह है", समाज को टूटने से बचा सकता है।

जातिगत राजनीति और कनकदास: आज भी चुनाव से लेकर सामाजिक विमर्श तक जाति एक बड़ा कारक है। कनकदास का 'रामधान्य चरित्र' हमें सिखाता है कि समाज के संसाधनों और सम्मान पर गरीबों (रागी) का पहला हक होना चाहिए।

उपभोक्तावाद बनाम संतोष: आधुनिक समाज अवसाद और अंधी दौड़ का शिकार है। संतों का यह विचार कि आंतरिक शुद्धता भौतिक संपत्ति से बड़ी है, मानसिक शांति का मार्ग प्रशस्त करता है।

### निष्कर्ष :

कुल मिलाकर यह अत्यंत स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि संत कबीरदास और भक्त कनकदास केवल अपने समय के कवि नहीं थे, वे त्रिकालदर्शी समाज सुधारक थे। कबीर ने उत्तर भारत की धरती से और कनकदास ने दक्षिण भारत (कर्नाटक) की चेतना से एक ही सुर में मानवता का गान किया।

उनकी सामाजिक चेतना का मूल मंत्र था—स्वयं को पहचानना और दूसरों में भी उसी दिव्य ज्योति को देखना। कबीर की 'साखी' और कनकदास के 'कीर्तन' वास्तव में भारतीय वास्तुकला की उस एक ही सीढ़ी के दो छोर हैं, जो मनुष्य को पशुता से ऊपर उठाकर देवत्व और एक समतामूलक समाज की ओर ले जाती हैं।

जब तक संसार में असमानता, पाखंड और भेदभाव रहेगा, तब तक कबीर की अक्खड़ वाणी और कनकदास के मधुर किंतु तार्किक सुर पूरे विश्व को राह दिखाते रहेंगे। इन दोनों महामानवों को एक साथ पढ़ना वास्तव में उत्तर और दक्षिण की सांस्कृतिक एवं वैचारिक एकता का सबसे सुंदर अनुभव है। अतः कहा जा सकता है कि कनक दास और कबीर दास दोनों के विचार आज भी उतने ही प्रभावशाली और प्रासंगिक हैं जो समाज को संभालने की ताकत रखते हैं तथा युगों युगों तक मानव समाज का पथ प्रदर्शन करने की क्षमता रखते हैं।

### संदर्भ ग्रंथ :

1. समकालीन समाजद हरिकार संत कनकदास : डीआर मंजूनाथ
2. कन्नड़ दास श्रेष्ठ कवि कनक : डॉ. बसैया हीरेमठ
3. वाणी के डिक्टेटर : डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिंदी के क्रांतिकारी संत कबीर.: मनोहर लाल शर्मा
5. भारतीय संत परंपरा और सामाजिक चेतना : डॉ. विमल दास मिश्र